[2025] 11 एस.सी.आर. 246 : 2025 INSC 1282

सादिक बी. हंचिनमणि
बनाम
कर्नाटक राज्य एवं अन्य

प्रतिवादी सं. 1: कर्नाटक राज्य
प्रतिवादी सं. 2: चंद्रुमल
प्रतिवादी सं. 3: संजय
प्रतिवादी सं. 4: नंदकुमार
प्रतिवादी सं. 5: विजय

(आपराधिक अपील संख्या 4728/2025)

04 नवम्बर 2025

[पंकज मित्तल एवं अहसानुद्दीन अमानुल्लाह, न्यायाधीशगण]

विचारणीय मुद्दा

यह विचारणीय मुद्दा उत्पन्न हुआ कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 156(3) के अंतर्गत जे.एम.एफ.सी. - न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा पुलिस को जाँच हेतु दिया गया निर्देश, जिसे विवादित आदेशों द्वारा निरस्त कर दिया गया, क्या न्यायोचित था; तथा क्या जे.एम.एफ.सी. के समक्ष ऐसा पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी, जिसके आधार पर संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को पुलिस जाँच हेतु संदर्भित किया जाना उचित ठहराया जा सके, जिसके परिणामस्वरूप एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

शीर्ष टिप्पणियाँ†

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 156(3), 482 - जाँच - अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता द्वारा जे.एम.एफ.सी. - न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के समक्ष अभियुक्त-निजी प्रतिवादियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 120B, 201, 419, 471, 468 तथा 420 के अंतर्गत निजी शिकायत दायर की गई - अपीलकर्ता का आरोप कि अभियुक्त व्यक्तियों ने किराया अनुबंध तथा ई-स्टाम्प पेपर निष्पादित किए, जो जाली थे, ताकि अवैध रूप से एक निश्चित संपत्ति पर कब्ज़ा दावा किया जा सके - शिकायत

जे.एम.एफ.सी. के समक्ष दायर की गई और जे.एम.एफ.सी. ने मामले को जाँच हेतु पुलिस थाना को संदर्भित किया - अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 120B, 201, 419, 471, 468 तथा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए एफ.आई.आर. दर्ज की गई और जाँच की गई - अभियुक्त व्यक्तियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत याचिकाएँ दायर कर, संबंधित अभियुक्तों के संबंध में जे.एम.एफ.सी. द्वारा पारित आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना की - उच्च न्यायालय ने उक्त याचिकाएँ स्वीकार कीं - शुद्धता:

अभिनिर्धारित: जे.एम.एफ.सी. का आदेश दोषपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता - पुलिस द्वारा पूर्ण एवं विस्तृत जाँच को न्यायोचित ठहराने हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी - जे.एम.एफ.सी. ने अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री के आलोक में, अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथमदृष्टया मामला स्थापित होने के कारण, मामले को जाँच हेतु पुलिस को सही रूप से संदर्भित किया - उच्च न्यायालय, *प्रथम विवादित आदेश* के माध्यम से, प्रतीत होता है कि जे.एम.एफ.सी. द्वारा प्रयुक्त शब्द 'further' से अनावश्यक रूप से प्रभावित हो गया - जे.एम.एफ.सी. ने संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत मामले को पुलिस को संदर्भित किया था और 'further' शब्द का प्रयोग दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के संदर्भ में नहीं था; इस सूक्ष्म भेद को *प्रथम विवादित आदेश* ने नज़रअंदाज़ कर दिया - तत्कालीन मामला प्रथमदृष्टया संज्ञेय अपराधों के घटित होने को दर्शाने वाली सामग्री प्रस्तुत करता है, जो पुलिस जाँच को न्यायोचित ठहराती है - अतः विवादित आदेशों में हस्तक्षेप आवश्यक हो गया - मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के समग्र परीक्षण पर, *प्रथम* एवं *द्वितीय विवादित आदेश* निरस्त किए जाते हैं - एफ.आई.आर. बहाल की जाती है - पुलिस को विधि के अनुसार शीघ्र जाँच करने का निर्देश दिया जाता है। [अनुच्छेद 38-43]

उद्धृत निर्णयजन्य विधि

प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **[2015] 4 एससीआर 108 : (2015) 6 एससीसी 287;** *निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य* **[2021] 4 एससीआर 1044: (2021) 19 एससीसी 401;** *मीना एम. डोंगरे बनाम सादिक पुत्र बशीरहम्मद हंचनमणि*, **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 1667-1668/2016;** *समी खान बनाम बिंदू खान* **[1998] पूरक 1 एससीआर 244: (1998) 7 एससीसी 59;** *माधो बनाम महाराष्ट्र राज्य* **[2013] 5 एससीआर 484: (2013) 5 एससीसी 615;**

रामदेव फूड प्रोडक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य **[2015] 5 एससीआर 283 : (2015) 6 एससीसी 439;** *कार्डिनल मार जॉर्ज एलेनचेरी बनाम केरल राज्य* **[2023] 2 एससीआर 1014 : (2023) 18 एससीसी 730 - संदर्भित।**

अधिनियमों की सूची

1908; सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005.

प्रमुख शब्दों की सूची

पुलिस जाँच; न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी; धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुलिस को जाँच हेतु संदर्भ; किराया अनुबंध; ई-स्टाम्प पेपर; “further” शब्द का प्रयोग।

मामले की उत्पत्ति

आपराधिक अपीलीय अधिकारिता: आपराधिक अपील संख्या 4728/2025

कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ सर्किट पीठ द्वारा सीआरएलपी संख्या 100651/2018 में दिनांक 18.11.2021 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

संबंधित

आपराधिक अपील संख्या 4728/2025

अधिवक्तागण

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

शैलेश मडियाल, वरिष्ठ अधिवक्ता; रोहित कुमार सिंह; सुश्री दिविजा महाजन; सुश्री निशी सिंह; सुश्री श्वेता प्रियदर्शिनी; शिखर गुप्ता; शुभम वी. गावंडे।

प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता:

प्रतीक चड्ढा, अपर महाधिवक्ता; डी. एल. चिदानंद; एन. डी. बी. राजू; श्रीमती भारती राजू; सुश्री वसुंधरा राजू; एम. ए. चिन्नासामी; सी. राघवेंद्रन; श्रीमती सी. रुबावती।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

अहसानुद्दीन अमानुल्लाह, न्यायाधीश

विलंब क्षम्य किया गया।

2. दोनों याचिकाओं में अनुमति प्रदान की गई।

3. तत्कालीन आपराधिक अपीलें, जो कि शिकायतकर्ता की ओर से दायर की गई हैं, कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ पीठ (आगे 'उच्च न्यायालय' कहा जाएगा) के दो माननीय एकल न्यायाधीशों द्वारा पारित अंतिम निर्णय एवं आदेशों को चुनौती देने के लिए दायर की गई हैं– एक, दिनांक 18.11.2021 को सीआरएलपी संख्या 100651/2018 **[2021:KHC-D:90]** में पारित आदेश (जिसे आगे 'द्वितीय विवादित आदेश' कहा गया है), तथा दूसरा, दिनांक 24.07.2019 को सीआरएलपी संख्या 100549/2018 **[2019:KHC-D:5908]** में पारित आदेश (जिसे आगे 'प्रथम विवादित आदेश' कहा गया है)। उक्त आदेशों के माध्यम से उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों के पक्ष में निर्णय देते हुए, बेलगावी स्थित माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी-III न्यायालय (आगे 'जे.एम.एफ.सी.' कहा जाएगा) द्वारा दिनांक 18.01.2018 को पारित आदेश को, संबंधित अभियुक्त-निजी प्रतिवादियों के संबंध में, निरस्त कर दिया। यह निरस्तीकरण अभियुक्त-निजी प्रतिवादियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (आगे 'संहिता' कहा जाएगा) की धारा 482[1] के अंतर्गत दायर याचिकाओं पर किया गया।

संक्षिप्त तथ्य:

4. अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (आगे 'भा.दं.सं.' कहा जाएगा) की धाराएँ 120B, 201, 419, 471, 468 तथा 420 के अंतर्गत, निजी प्रतिवादियों के विरुद्ध, जे.एम.एफ.सी. के समक्ष पी.सी.आर. संख्या 1/2018 के रूप में एक निजी शिकायत दायर की।

---

1 '***482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का संरक्षण–*** *इस संहिता में निहित कोई भी बात ऐसी नहीं मानी जाएगी जिससे उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ सीमित या प्रभावित हों; ताकि वह इस संहिता के अंतर्गत पारित किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, अथवा अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक ऐसे आदेश पारित कर सके।'*

5. अपीलकर्ता-शिकायतकर्ता ने माननीय द्वितीय अतिरिक्त वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, बेलगावी के समक्ष ओ.एस. संख्या 43/2009 के रूप में एक वाद दायर किया था, जिसमें यह घोषणा किए जाने की प्रार्थना की गई थी कि वह अपने पिता द्वारा किए गए मौखिक उपहार के आधार पर वाद संपत्ति का स्वामी एवं कब्जेदार है, तथा उसके पिता बशीरअहमद द्वारा अभियुक्त संख्या 1 के पक्ष में दिनांक 03.02.2009 को निष्पादित विक्रय विलेख को अवैध, शून्य एवं उस पर बाध्यकारी न घोषित किया जाए। यह उल्लेखनीय है कि बशीरअहमद ने वाद का प्रतिवाद नहीं किया और वह *एकतरफा* रहा। वाद की सुनवाई के पश्चात दिनांक 28.03.2013 को वाद खारिज कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 के रूप में एक अपील दायर की। अपील में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1908 (आगे 'सी.पी.सी.' कहा जाएगा) के आदेश एक्सएलआई नियम 5[2] सहपठित धारा 151[3] के अंतर्गत एक अंतरिम आवेदन दायर किया गया, जिसमें दिनांक 28.03.2013 के निर्णय एवं डिक्री के प्रवर्तन पर स्थगन की प्रार्थना की गई। दिनांक 03.06.2013 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने वाद संपत्ति के शीर्षक एवं कब्जे के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का अंतरिम आदेश पारित किया, जिसे अपील की लंबितता के दौरान समय-समय पर बढ़ाया गया, किंतु बाद में उसे निरस्त कर दिया गया।

---

2 ***'5. अपीलीय न्यायालय द्वारा स्थगन—*** *(1) कोई अपील, जिस डिक्री या आदेश के विरुद्ध दायर की गई हो, उसके अंतर्गत चल रही कार्यवाही का स्थगन स्वतः नहीं करेगी, जब तक कि अपीलीय न्यायालय द्वारा ऐसा आदेश न दिया जाए; और केवल इस कारण से कि डिक्री के विरुद्ध अपील दायर की गई है, डिक्री के निष्पादन पर भी स्थगन नहीं माना जाएगा। तथापि, अपीलीय न्यायालय पर्याप्त कारण होने पर ऐसी डिक्री के निष्पादन पर स्थगन का आदेश दे सकता है।*

व्याख्या— *डिक्री के निष्पादन पर स्थगन के लिए अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश, उस आदेश की प्रथम दृष्टया न्यायालय (प्रथम श्रेणी न्यायालय) को संप्रेषण की तिथि से प्रभावी होगा; किंतु अपीलकर्ता द्वारा अपने व्यक्तिगत ज्ञान पर आधारित शपथपत्र, जिसमें यह कहा गया हो कि अपीलीय न्यायालय द्वारा डिक्री के निष्पादन पर स्थगन का आदेश पारित किया गया है, अपीलीय न्यायालय से स्थगन आदेश अथवा उसके विपरीत कोई आदेश प्राप्त होने तक, प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा कार्यान्वित किया जाएगा।*

(2) डिक्री पारित करने वाले न्यायालय द्वारा स्थगन— जहाँ अपील योग्य डिक्री के निष्पादन पर स्थगन के लिए, अपील दायर करने की अनुमति दी गई अवधि की समाप्ति से पूर्व आवेदन किया जाता है, वहाँ डिक्री पारित करने वाला न्यायालय पर्याप्त कारण दर्शाए जाने पर निष्पादन को स्थगित करने का आदेश दे सकता है।

6. उपरोक्त अपील की लंबितता के दौरान, अपीलकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि दिनांक 18.06.2015 को वीना (अभियुक्त संख्या 1), यद्यपि एफ.आई.आर. में उसका नाम मीना के रूप में उल्लिखित है, तथा उसका पति, अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर, बिना अनुमति वाद संपत्ति पर लगाए गए ताले को तोड़कर उसमें अनधिकार प्रवेश कर गए और वाद संपत्ति में नवीनीकरण/निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया। अपीलकर्ता ने उन्हें नवीनीकरण/निर्माण कार्य रोकने के लिए नोटिस जारी किया, जिसके पश्चात उक्त कार्य रोक दिया गया। इसके पश्चात अपीलकर्ता को यह भी ज्ञात हुआ कि दिनांक 18.10.2015 को अभियुक्त संख्या 1 एवं 2 तथा अन्य व्यक्तियों ने पुनः संपत्ति पर लगाए गए ताले को तोड़ दिया और कार्य को दोबारा प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता ने आदेश XXXIX नियम 2-A[4] सहपठित धारा 151, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सी.पी.सी.) के अंतर्गत, आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 में आई.ए. संख्या 1/2015 के रूप में एक आवेदन दायर किया, जिसमें अभियुक्त संख्या 1 एवं 4 के विरुद्ध अवमानना कार्यवाही आरंभ करने की प्रार्थना की गई। अभियुक्त संख्या 1 ने आई.ए. संख्या 1/2015 के संबंध में उत्तर दाखिल किया और दिनांक 20.05.2013 का एक ई-स्टाम्प पेपर प्रस्तुत किया, जिसे किराया अनुबंध के रूप में दर्शाया गया था, साथ ही कुछ किराया रसीदें भी प्रस्तुत की गईं। उक्त किराया अनुबंध अभियुक्त संख्या 1 द्वारा अभियुक्त संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित किया गया था।

2' *(3) उप-नियम (1) या उप-नियम (2) के अंतर्गत निष्पादन पर स्थगन का कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा, जब तक कि आदेश पारित करने वाला न्यायालय इस बात से संतुष्ट न हो—*

(क) कि निष्पादन पर स्थगन का आदेश न दिए जाने पर, स्थगन के लिए आवेदन करने वाले पक्ष को पर्याप्त हानि हो सकती है;

(ख) कि आवेदन अनुचित विलंब के बिना किया गया है; और

(ग) कि आवेदक द्वारा ऐसी डिक्री या आदेश के समुचित पालन के लिए, जो अंततः उस पर बाध्यकारी हो सकता है, पर्याप्त प्रतिभूति प्रदान की गई है।

(4) उप-नियम (3) के उपबंधों के अधीन, न्यायालय आवेदन की सुनवाई लंबित रहने के दौरान, एकतरफा (एक्स-पार्टी) रूप से निष्पादन पर स्थगन का आदेश पारित कर सकता है।

(5) उपर्युक्त उप-नियमों में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, जहाँ अपीलकर्ता नियम 1 के उप-नियम (3) में निर्दिष्ट जमा राशि जमा करने में या प्रतिभूति प्रदान करने में विफल रहता है, वहाँ न्यायालय डिक्री के निष्पादन पर स्थगन का आदेश पारित नहीं करेगा।

7. अपीलकर्ता ने उस दस्तावेज़ की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने हेतु कर्नाटक सरकार के स्टाम्प एवं पंजीकरण विभाग, बेंगलुरु के अंतर्गत पंजीयन महानिरीक्षक एवं स्टाम्प आयुक्त के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसे अवमाननाकर्ता/अभियुक्त संख्या 1 द्वारा प्रथम अपील में न्यायालय के समक्ष किराया अनुबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया था। अपीलकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि उक्त ई-स्टाम्प पेपर जाली था, क्योंकि उसने उसी क्रमांक वाले स्टाम्प पेपर की प्रमाणित प्रति/प्रतियाँ प्राप्त कीं, जो उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए स्टाम्प पेपर से मेल नहीं खाती थीं।

8. उक्त किराया अनुबंध अभियुक्त संख्या 1 द्वारा अभियुक्त संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित किया गया था, और अपीलकर्ता का आरोप है कि उसे *पूर्व-तिथि* का दर्शाया गया, ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि वह उच्च न्यायालय द्वारा पारित *यथास्थिति* आदेश की तिथि से पूर्व अस्तित्व में था।

9. यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी अभियुक्तों ने आपस में मिलीभगत करके जाली, मनगढ़ंत एवं निर्मित दस्तावेज़ तैयार कर उसे प्रस्तुत किया, ताकि अनुकूल आदेश प्राप्त किया जा सके तथा वाद संपत्ति पर कब्ज़ा प्राप्त किया जा सके; और उन्होंने संपत्ति पर अपने कब्ज़े को उचित ठहराने के लिए किराया रसीदें भी गढ़ीं। दस्तावेज़ की जालसाज़ी एवं मनगढ़ंत तैयार किए जाने की जाँच के लिए बेलगावी के खाडे बाज़ार पुलिस थाना में भी एक शिकायत दर्ज कराई गई; तथापि, उक्त शिकायत पर पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई।

---

*3 **'151. न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का संरक्षण–** इस संहिता में निहित कोई भी बात ऐसी नहीं मानी जाएगी जिससे न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ सीमित हों या अन्यथा प्रभावित हों, ताकि वह न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आवश्यक ऐसे आदेश पारित कर सके।'*

*4 **'2-A. निषेधाज्ञा की अवज्ञा या उल्लंघन के परिणाम–** (1) नियम 1 या नियम 2 के अंतर्गत प्रदत्त किसी भी निषेधाज्ञा की अवज्ञा किए जाने की स्थिति में, अथवा जिन शर्तों पर निषेधाज्ञा प्रदान की गई हो या आदेश पारित किया गया हो, उनके किसी भी उल्लंघन की स्थिति में, वह न्यायालय जिसने निषेधाज्ञा प्रदान की या आदेश पारित किया है, या वह कोई अन्य न्यायालय जहाँ वाद या कार्यवाही स्थानांतरित की गई हो, ऐसे अवज्ञा या उल्लंघन के दोषी व्यक्ति की संपत्ति कुर्क करने का आदेश दे सकता है; तथा उस व्यक्ति को, जब तक कि इस बीच न्यायालय उसके रिहा किए जाने का निर्देश न दे, अधिकतम तीन माह की अवधि के लिए दीवानी कारागार में निरुद्ध करने का भी आदेश दे सकता है।*

(2) इस नियम के अंतर्गत की गई कोई भी कुर्की एक वर्ष से अधिक अवधि तक प्रभावी नहीं रहेगी; और उस अवधि की समाप्ति पर, यदि अवज्ञा या उल्लंघन जारी रहता है, तो कुर्क की गई संपत्ति को बेचा जा सकता है और उसकी प्राप्ति से न्यायालय, जिसे उचित प्रतीत हो, पीड़ित पक्ष को प्रतिकर प्रदान कर सकता है तथा शेष राशि, यदि कोई हो, उसके हकदार पक्ष को अदा करेगा।

10. इसके पश्चात अपीलकर्ता ने जे.एम.एफ.सी. के समक्ष एक निजी शिकायत दायर की। जे.एम.एफ.सी. ने दिनांक 18.01.2018 के आदेश द्वारा यह माना कि मामला संहिता की धारा 156(3)[5] के अंतर्गत जाँच हेतु संदर्भित किया जाना चाहिए। तदनुसार, जे.एम.एफ.सी. ने प्रकरण को खाडे बाज़ार पुलिस थाना को जाँच हेतु भेजा। परिणामस्वरूप, अभियुक्त संख्या 1 से 7 के विरुद्ध अपराध संख्या 12/2018 (आगे 'एफ.आई.आर.' कहा जाएगा) के रूप में भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 120B, 201, 419, 471, 468 तथा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराधों के लिए एफ.आई.आर. दर्ज की गई और जाँच आरंभ की गई। माननीय जे.एम.एफ.सी. ने दिनांक 18.01.2018 के आदेश में यह दर्ज किया कि– "*शिकायतकर्ता ने **प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 6 एससीसी 287** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन किया है।*" (जैसा मूल में है)

11. उच्च न्यायालय ने प्रथम विवादित आदेश में, अन्य बातों के साथ, *निम्नलिखित अवलोकन किया:*

> '**10.** ... *किसी भी बात का उल्लेख किए बिना माननीय मजिस्ट्रेट ने आगे की जाँच का आदेश पारित कर दिया है, जबकि कोई विधि माननीय मजिस्ट्रेट को आगे की जाँच का निर्देश देने की परिकल्पना नहीं करती। यदि किसी भी प्रकार की आगे की जाँच की जानी हो, तो वह केवल तब होगी जब जाँच एजेंसी द्वारा कोई अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जाए और यदि उसमें कोई कमी हो तथा पुलिस द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अंतर्गत कोई अनुरोध किया जाए, तब ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय अपना अधिकार क्षेत्र प्रयोग कर सकता है। किंतु जब निजी शिकायत दायर की गई है और न्यायालय ने बिना किसी औचित्यपूर्ण कारण के सीधे आगे की जाँच का आदेश पारित कर दिया है, तो उस प्रकाश में उक्त आदेश स्वयं ही औचित्यहीन प्रतीत होता है, क्योंकि न्यायालय ने अपने मस्तिष्क का अनुप्रयोग नहीं किया है और यह विधि की दृष्टि में स्थायित्व योग्य नहीं है।*'

(ज़ोर दिया गया)

5 ***'156. संज्ञेय मामले की जाँच करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति–***

(1)...

(2)...

(3) धारा 190 के अंतर्गत सशक्त कोई भी मजिस्ट्रेट, उपर्युक्त प्रकार की जाँच का आदेश दे सकता है।'

12. उच्च न्यायालय ने द्वितीय विवादित आदेश में, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित दर्ज किया:

‘***24.*** *... यद्‌यपि प्रतिवादी संख्या 2 ने दीवानी न्यायालय के समक्ष संपत्ति पर अपने अधिकार की घोषणा हेतु वाद दायर किया था, यह दावा करते हुए कि वह मौखिक उपहार के आधार पर संपत्ति का स्वामी है और उसके पिता द्‌वारा अभियुक्त संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित पंजीकृत विक्रय विलेख उस पर बाध्यकारी नहीं है, तथापि यह निर्विवाद है कि ओ.एस. संख्या 43/2009 में दायर उक्त वाद खारिज कर दिया गया और यह घोषित किया गया कि प्रतिवादी संख्या 2 के पिता द्‌वारा अभियुक्त संख्या 1 के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित कर संपत्ति का शीर्षक हस्तांतरित किया गया है तथा प्रतिवादी संख्या 2 वांछित घोषणा का अधिकारी नहीं है। उक्त निर्णय एवं डिक्री को चुनौती देते हुए आरएफए संख्या 4095/2013 इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है, जो अभी विचाराधीन है। यद्‌यपि संपत्ति के शीर्षक एवं कब्ज़े के संबंध में यथास्थिति आदेश पारित किया गया था, तथापि इस न्यायालय द्‌वारा यह स्पष्ट किया गया कि यह आदेश केवल अभियुक्त संख्या 1 के शीर्षक एवं कब्ज़े की सुरक्षा हेतु है, जिसे अनुसूची संपत्ति पर कब्ज़ाधारी माना गया है। यद्‌यपि विचारण न्यायालय द्‌वारा दी गई उक्त निष्कर्ष इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन है, फिर भी तथ्य यह है कि ऐसा कोई प्रथमदृष्टया सामग्री उपलब्ध नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि किसी भी समय प्रतिवादी संख्या 2 के पिता द्‌वारा संपत्ति का कब्ज़ा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में सौंपा गया था। ...*

xxx

27. *यह भी उल्लेखनीय है कि अभियुक्त संख्या 2 तथा 5 से 7, जो यहाँ याचिकाकर्ता हैं, न तो ओ.एस. संख्या 43/2009 में और न ही इस न्यायालय के समक्ष आरएफए संख्या 4095/2013 में पक्षकार हैं। ऐसी परिस्थितियों में, प्रतिवादी संख्या 2 को यह स्पष्ट करना चाहिए था कि इन याचिकाकर्ताओं द्‌वारा दस्तावेज की मनगढ़ंत तैयारी (जैसा कि उसके द्‌वारा आरोपित किया गया है) में क्या भूमिका निभाई गई और उसी का लाभ उठाने हेतु उक्त दस्तावेज को प्रथम अवसर पर न्यायालय के समक्ष कैसे प्रस्तुत किया गया।*‘

(ज़ोर दिया गया)

<u>अपीलकर्ता की दलीलें:</u>

13. अपीलकर्ता का मुख्य विवाद यह है कि प्रतिवादी चन्द्रुमल एम. परचानी द्वारा अन्य प्रतिवादियों के साथ मिलीभगत कर ई-स्टाम्प पेपर पर प्रस्तुत किया गया किरायानामा जाली है।

14. अपीलकर्ता के माननीय अधिवक्ता ने जोरदार रूप से प्रस्तुत किया कि पंजीयन के महानिरीक्षक एवं स्टाम्प आयुक्त ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को पत्र प्रेषित किया, जिसमें यह उल्लेख किया गया कि क्षेत्रीय प्रबंधक (ई-स्टाम्पिंग) तथा कर्नाटक स्टेट सौहार्दा फेडरल को-ऑपरेटिव लिमिटेड, बेंगलुरु के अधिकृत हस्ताक्षरी द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों का अवलोकन करने पर *प्रथम दृष्टया* यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी चन्द्रुमल एम. परचानी द्वारा क्रय किया गया और किरायानामे में प्रयुक्त ई-स्टाम्प जाली है।

15. माननीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि जिला पंजीयक, बेलगावी ने यह निर्देश दिया है कि चंद्रुमल एम. परचानी-प्रतिवादी, जो ई-स्टाम्प पेपर का क्रेता है, तथा श्री गजानन मल्टीपर्पज़ सौहार्दा सहकारी नियामित, दनेगल्लि, शाहापुर, बेलगावी, जिसने जाली ई-स्टाम्प पेपर बेचा, के विरुद्ध पुलिस शिकायत दर्ज की जाए; और उक्त श्री गजानन मल्टीपर्पज़ सौहार्दा सहकारी नियामित के संबंध में पृथक शिकायत भी दायर की गई है।

16. माननीय अधिवक्ता ने इस तथ्य पर बल दिया कि जब अपीलकर्ता ने कर्नाटक सरकार के स्टाम्प एवं पंजीकरण विभाग के पंजीयन महानिरीक्षक एवं स्टाम्प आयुक्त के समक्ष, उच्च न्यायालय के समक्ष किराया अनुबंध के रूप में प्रस्तुत दस्तावेज़ की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने हेतु आवेदन दायर किया, तब अपीलकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि उक्त ई-स्टाम्प पेपर जाली था; क्योंकि उसने उसी क्रमांक वाले स्टाम्प पेपर की प्रमाणित प्रति/प्रतियाँ प्राप्त कीं, जो उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए स्टाम्प पेपर से मेल नहीं खाती थीं।

17. माननीय अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आग्रहपूर्वक प्रस्तुत किया कि मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि दोनों अपीलों में सभी निजी प्रतिवादियों ने आपस में मिलीभगत कर दस्तावेज़ का मनगढ़ंत निर्माण, जालसाजी, कूटकरण एवं कृत्रिम निर्माण किया और उसे उच्च न्यायालय के समक्ष *दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य* से प्रस्तुत किया, ताकि अनुकूल आदेश प्राप्त कर वाद संपत्ति पर कब्जा किया जा सके। यह भी प्रतिपादित किया गया कि निजी प्रतिवादियों ने न्यायालय के साथ धोखाधड़ी की तथा न्याय वितरण प्रणाली की धारा में बाधाएँ उत्पन्न कीं।

18. इसके अतिरिक्त, माननीय अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियुक्तों द्वारा रची गई साजिश की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि *प्रथमदृष्टया* ऐसी सामग्री उपलब्ध है जो अपीलकर्ता के इस दावे का समर्थन करती है कि ई-स्टाम्प पेपर एक जाली दस्तावेज़ है।

19. यह भी प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता ने विभिन्न प्राधिकरणों को, जिनमें उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश भी सम्मिलित हैं, पत्र लिखा। तत्पश्चात माननीय मुख्य न्यायाधीश के सचिव ने दिनांक 14.09.2017 के पत्र द्वारा निर्देश दिया कि जाली ई-स्टाम्प पेपर के क्रेता तथा उक्त जाली ई-स्टाम्प पेपर के निर्गमकर्ता श्री गजानना मल्टीपरपज़ सौहार्दा सहकारी नियामित के विरुद्ध दर्ज शिकायत की जाँच का अनुवर्तन किया जाए।

20. माननीय अधिवक्ता ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने ***नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड महाराष्ट्र राज्य, (2021) 19 एससीसी 401*** में प्रतिपादित सिद्धांतों की उपेक्षा की है, जिसमें यह कहा गया है कि आपराधिक कार्यवाही को प्रारंभिक चरण में ही बाधित नहीं किया जाना चाहिए और जहाँ अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथमदृष्टया सामग्री उपलब्ध हो, वहाँ पुलिस को मामले की जाँच करने तथा अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

21. माननीय अधिवक्ता ने वीना-प्रतिवादी के आचरण की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यह कहा गया कि उसने उच्च न्यायालय द्वारा आईए संख्या 1/2023 में दिनांक 07.12.2015 को पारित आदेश के विरुद्ध दायर विशेष **अनुमति याचिकाएँ (सिविल) संख्या 1667-1668/2016,** शीर्षक ***'मीना एम. डोंगरे बनाम सादिक पुत्र बशीरमद हंचनमानी'***, दायर किए जाने के तथ्य को जानबूझकर और इरादतन छिपाया। उक्त विशेष अनुमति याचिकाएँ दिनांक 01.02.2016 को विचारार्थ आईं, किंतु प्रथम सूचीकरण की तिथि पर ही निम्नलिखित आदेश के साथ वापस ले ली गईं:

> *'याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता विशेष अनुमति याचिकाएँ वापस लेने की अनुमति माँगते हैं, साथ ही उच्च न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता चाहते हैं।*
>
> *तदनुसार, विशेष अनुमति याचिकाएँ उच्च न्यायालय के समक्ष उपयुक्त राहत हेतु उपयुक्त आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ, वापस लिए जाने के कारण निरस्त की जाती हैं।*

22. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने विवादित आदेशों के माध्यम से जाली ई-स्टाम्प पेपर पर ध्यान नहीं दिया, जबकि पक्षकारों के नाम तथा स्टाम्प शुल्क की राशि जैसी विसंगतियाँ विद्यमान थीं।

23. माननीय अधिवक्ता ने यह कहते हुए अपनी दलीलें समेटीं कि संबंधित समय पर जाँच प्रारंभिक अवस्था में थी, संबंधित व्यक्ति अग्रिम जमानत पर थे, और यदि जाँच को पूर्ण होने दिया जाता तो किसी प्रकार की कोई हानि नहीं होती।

24. माननीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि विवादित दस्तावेज़ सर्वप्रथम उच्च न्यायालय के समक्ष आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 में प्रस्तुत किया गया था और तभी उस दस्तावेज़ के अस्तित्व की जानकारी अपीलकर्ता को हुई। संबंधित विभाग से उक्त दस्तावेज़ की प्रति प्राप्त करने तथा कर्नाटक राज्य सौहार्दा फेडरल को-ऑपरेटिव लिमिटेड, बेंगलुरु से रिपोर्टें प्राप्त करने के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि अभियुक्त संख्या 2 ने ही ई-स्टाम्प पेपर तथा पट्टा/किराया अनुबंध के रूप में दर्शाए गए दस्तावेज़ को उच्च न्यायालय के समक्ष जाली रूप से तैयार किया था। अतः गहन जाँच की आवश्यकता थी। अंत में, अपीलों को स्वीकार किए जाने की प्रार्थना की गई।

<u>**प्रतिवादी संख्या 1–कर्नाटक राज्य की ओर से प्रस्तुत दलीलें:**</u>

25. राज्य के अधिवक्ता ने अपीलकर्ता द्वारा की गई कुछ प्रस्तुतियों को पुनः दोहराया, किन्तु उन्हें स्पष्ट किया तथा *अधोलिखित* रूप से पूरक भी किया।

26. राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी संख्या 2 से 5 (अभियुक्त संख्या 2, 5, 6 एवं 7) द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या ... वर्ष 2025 @ एस.एल.पी. (क्रि.) संख्या 11336/2022 में, जो उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय विवादित आदेश में परिलक्षित है, मुख्य आधार यह रखा गया था कि पूर्व में अभियुक्त संख्या 1 एवं 3, जिनके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही प्रारंभ की गई थी, ने सी.आर.एल.पी. संख्या 100549/2018 दाखिल कर उच्च न्यायालय का रुख किया था, जिसमें उनके विरुद्ध प्रारंभ की गई कार्यवाही को निरस्त करने की मांग की गई थी। उच्च न्यायालय ने वहाँ यह निष्कर्ष निकाला कि जे.एम.एफ.सी. ने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना ही मामले को जाँच हेतु संदर्भित कर दिया था। अतः क्रिमिनल पिटीशन संख्या

100549/2018 स्वीकार कर ली गई और प्रथम विवादित आदेश द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या ... वर्ष 2025 @ एस.एल.पी. (क्रि.) संख्या वर्ष 2025 @ डायरी संख्या 39619/2022 में प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 (अभियुक्त संख्या 1 एवं 3) के विरुद्ध कार्यवाही निरस्त कर दी गई।

27. माननीय अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि अभियुक्त संख्या 2, 5, 6 एवं 7 ने समानता का दावा किया, यह कहते हुए कि वे भी समान स्थिति में हैं। किंतु अभियुक्त संख्या 1 एवं 3 के विरुद्ध लगाए गए आरोप, अभियुक्त संख्या 2, 5, 6 एवं 7 के विरुद्ध लगाए गए आरोपों से भिन्न हैं। अतः उन्हें समानता का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए।

28. माननीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि समान सिद्धांतों को लागू करते हुए द्वितीय विवादित आदेश पारित किया गया; तथापि माननीय एकल न्यायाधीशों को मामला प्रत्यावर्तित करना चाहिए था, क्योंकि जे.एम.एफ.सी. द्वारा दिनांक 18.01.2018 को पारित वह आदेश, जिसके द्वारा मामले को पुलिस जाँच हेतु संदर्भित किया गया था, एक उपचारणीय त्रुटि था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 460[6] से प्रभावित होता है, क्योंकि वह ऐसी अनियमितताओं के अंतर्गत आता है जो कार्यवाही को निरस्त नहीं करतीं।

---

*6. **'460. ऐसी अनियमितताएँ जो कार्यवाही को निरस्त नहीं करतीं**–यदि कोई मजिस्ट्रेट, जो विधि द्वारा निम्नलिखित में से कोई कार्य करने के लिए सशक्त नहीं है,अर्थात्–*
(क) धारा 94 के अंतर्गत तलाशी वारंट जारी करना;
(ख) धारा 155 के अंतर्गत पुलिस को किसी अपराध की जाँच करने का आदेश देना;
(ग) धारा 176 के अंतर्गत पंचनामा (इनक्वेस्ट) करना;
(घ) धारा 187 के अंतर्गत, अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र से बाहर किए गए अपराध के संबंध में, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी हेतु प्रक्रिया जारी करना;
(ङ) धारा 190 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) के अंतर्गत किसी अपराध का संज्ञान लेना;
(च) धारा 192 की उपधारा (2) के अंतर्गत किसी मामले को सौंपना;
(छ) धारा 306 के अंतर्गत क्षमादान देना;
(ज) धारा 410 के अंतर्गत किसी मामले को वापस बुलाकर स्वयं विचारण करना; या
(झ) धारा 458 या धारा 459 के अंतर्गत संपति का विक्रय करना–
यदि वह सद्भावना में भूलवश ऐसा कार्य कर देता है, तो केवल इस आधार पर कि वह ऐसा करने के लिए सशक्त नहीं था, उसकी कार्यवाही निरस्त नहीं की जाएगी।'

29. माननीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि द्वितीय विवादित आदेश में यह मत व्यक्त किया गया कि अपीलकर्ता ने अभियुक्त संख्या 2, 5, 6 एवं 7 द्वारा दस्तावेज़ की मनगढ़ंत तैयारी एवं जालसाज़ी में निभाई गई भूमिका को स्पष्ट नहीं किया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि किसी के विरुद्ध–यहाँ तक कि न्यायालय के विरुद्ध भी–उनकी भूमिका अस्पष्ट है; किंतु अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेज़ों के आधार पर यह स्पष्ट है कि जाली ई-स्टाम्प पेपर अभियुक्त संख्या 2 द्वारा खरीदा गया था। उपर्युक्त दलीलों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त आदेश/निर्णय पारित किए जाने की प्रार्थना की गई।

<u>निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत दलीलें:</u>

30. यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्त-निजी प्रतिवादियों की ओर से माननीय अधिवक्ता ने उपस्थिति दर्ज कराई, किंतु निजी प्रतिवादियों ने कोई प्रतिउत्तर हलफ़नामा दायर नहीं किया। माननीय अधिवक्ता ने विवादित आदेशों का समर्थन किया और यह तर्क दिया

कि उनमें व्यक्त दृष्टिकोण को पलटने के लिए कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है।

31. माननीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि दिनांक 28.03.2016 को आई.ए. संख्या 3/2016 में पारित आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने वाद संपत्ति के संबंध में दिनांक 03.06.2013 को पारित *यथास्थिति* आदेश को निरस्त कर दिया था तथा आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 की लंबितता के दौरान परिसर की चाबियाँ अभियुक्त संख्या 1 को सौंप दी गई थीं।

32. यह भी प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता के मन में निजी प्रतिवादियों के प्रति दुर्भावनापूर्ण आशय था, और इसी कारण उसने निजी शिकायत अर्थात् पी.सी.आर. संख्या 1/2018 दर्ज कराई।

33. माननीय अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि चूँकि वाद संपत्ति से संबंधित आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 का अंतिम निर्णय संबंधित निजी प्रतिवादियों के पक्ष में हुआ, अतः उनके विरुद्ध कोई आपराधिक दायित्व आरोपित नहीं किया जा सकता।

<u>विश्लेषण, तर्क एवं निष्कर्ष:</u>

34. विचारणीय प्रश्नों को निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किया जा सकता है: (i) क्या संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत जे.एम.एफ.सी. द्वारा पुलिस को जाँच हेतु

दिया गया निर्देश, जिसे विवादित आदेशों द्वारा निरस्त कर दिया गया, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर न्यायोचित था; तथा (ii) क्या जे.एम.एफ.सी. के समक्ष ऐसा पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी, जिसके आधार पर संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को पुलिस जाँच हेतु संदर्भित किया जाना उचित ठहराया जा सके, जिसके परिणामस्वरूप एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

35. प्रासंगिक तथा निर्विवाद तथ्य यह हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 में, दिनांक 28.03.2013 के निर्णय एवं डिक्री के प्रवर्तन पर स्थगन हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI नियम 5 सहपठित धारा 151 के अंतर्गत एक अंतरिम आवेदन दायर किया गया था। दिनांक 03.06.2013 के आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने वाद संपत्ति के शीर्षक एवं कब्ज़े के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का अंतरिम आदेश पारित किया, जिसे अपील की लंबितता के दौरान बढ़ाया गया, किंतु बाद में उसे निरस्त कर दिया गया। आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 की लंबितता के दौरान, अपीलकर्ता को यह ज्ञात हुआ कि दिनांक 18.06.2015 को अभियुक्त संख्या 1 तथा उसका पति, अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर, बिना अनुमति वाद संपत्ति पर लगाए गए ताले को तोड़कर उसमें अनधिकार प्रवेश कर गए और वाद संपत्ति में नवीनीकरण/निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया। अपीलकर्ता ने उन्हें नवीनीकरण/निर्माण कार्य रोकने के लिए नोटिस जारी किया, जिसके पश्चात उक्त कार्य रोक दिया गया। बाद में अपीलकर्ता को यह भी ज्ञात हुआ कि दिनांक 18.10.2015 को अभियुक्त संख्या 1 एवं 2 तथा अन्य व्यक्तियों ने पुनः संपत्ति पर लगाए गए ताले को तोड़ दिया और कार्य को दोबारा प्रारंभ कर दिया। इसके पश्चात, अपीलकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXXIX नियम 2-A सहपठित धारा 151 के अंतर्गत, अर्थात् आर.एफ.ए. संख्या 4095/2013 में आई.ए. संख्या 1/2015 के रूप में, अभियुक्त संख्या 1 एवं 4 के विरुद्ध अवमानना कार्यवाही आरंभ करने की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन दायर किया। अभियुक्त संख्या 1 ने आई.ए. संख्या 1/2015 के उत्तर में प्रत्युत्तर दाखिल किया और दिनांक 20.05.2013 का एक ई-स्टाम्प पेपर प्रस्तुत किया, जिसे किराया अनुबंध के रूप में दर्शाया गया था, साथ ही कुछ किराया रसीदें भी संलग्न की गईं। यह किराया अनुबंध अभियुक्त संख्या 1 द्वारा अभियुक्त संख्या 2 के पक्ष में निष्पादित किया गया था। आई.ए. संख्या 1/2015 के प्रत्युत्तर में लिया गया प्रतिरक्षण यह था कि दिनांक 03.06.2013 को यथास्थिति आदेश पारित होने से पूर्व ही, वाद संपत्ति को दिनांक 20.05.2013 को किराया आधार पर अभियुक्त संख्या 2 को दे दिया गया था, तथा उसके साथ किराया अनुबंध की प्रति भी संलग्न की गई थी। इसके अतिरिक्त,

₹3,000/- (तीन हज़ार रुपये) प्रतिमाह किराये की रसीदें भी संलग्न की गई थीं। यहाँ हम ठहरते हैं, क्योंकि यह वर्तमान मामलों में एक निर्णायक मोड़ है। अभियुक्त संख्या 1 द्वारा अभियुक्त संख्या 2 के पक्ष में किया गया किराया अनुबंध दिनांक 20.05.2013 को निष्पादित बताया गया है। तथापि, प्रस्तुत किया गया किराया अनुबंध यह दर्शाता है कि वह दिनांक 20.05.2013 के ई-स्टाम्प पेपर संख्या IN-KA82473995873571L पर निष्पादित किया गया था। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत, कर्नाटक सरकार के स्टाम्प एवं पंजीकरण विभाग, बेंगलुरु के पंजीयन महानिरीक्षक एवं स्टाम्प आयुक्त से अपीलकर्ता द्वारा कराई गई जाँच से यह प्रकट हुआ कि उसी पंजीकरण तिथि वाले उक्त ई-स्टाम्प पेपर क्रमांक का संबंध जे.डी. दुरादुंडी और एस.बी. जनगौड़ा के बीच हुए एक विक्रय अनुबंध से था। अतः यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया किराया अनुबंध जिस ई-स्टाम्प पेपर पर दिखाया गया था, वह ई-स्टाम्प पेपर उक्त व्यक्तियों द्वारा एक विक्रय अनुबंध के लिए प्रयुक्त किया गया था, जिसका अभियुक्त संख्या 1 एवं 2 अथवा किसी किराया अनुबंध से कोई संबंध नहीं था।

36. अभियुक्त संख्या 1 ने यह भी कहा है कि किरायेदार, अर्थात् अभियुक्त संख्या 2, ने दिनांक 18.10.2015 को वाद संपत्ति में नवीनीकरण एवं सफ़ाई का कार्य किया हो सकता है। यहीं पर न्यायालय को सत्य उभरता हुआ दिखाई देता है। अभियुक्त संख्या 1 द्वारा स्वयं उच्च न्यायालय के अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए किराया/पट्टा अनुबंध की प्रति में यह स्पष्ट रूप से शर्तबद्ध है कि अभियुक्त संख्या 2 परिसर की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं करेगा और अभियुक्त संख्या 1 की लिखित सहमति के बिना उक्त परिसर में कोई मरम्मत कार्य नहीं करेगा। यह अभियुक्त संख्या 1 का मामला नहीं है कि अभियुक्त संख्या 2 ने कोई अनुमति माँगी थी। *तर्कार्थ*, यह मान भी लिया जाए कि अभियुक्त संख्या 2 ने कुछ नवीनीकरण किया हो, तो मात्र इससे अभियुक्त संख्या 1 को दिनांक 03.06.2013 के यथास्थिति बनाए रखने के आदेश द्वारा आरोपित दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकता; और आगे, यदि अभियुक्त संख्या 1 को यह जानकारी थी कि अभियुक्त संख्या 2 किराया/पट्टा अनुबंध की शर्तों का उल्लंघन कर रहा है, तो उसके द्वारा अभियुक्त संख्या 2 के विरुद्ध या उसके संबंध में उचित कार्रवाई या कदम न उठाया जाना, दिनांक 03.06.2013 के आदेश के किसी भी उल्लंघन के लिए उसे उत्तरदायी ठहराएगा–जिस उल्लंघन को वह स्वयं स्वीकार करती है कि अभियुक्त संख्या 2 द्वारा दिनांक 18.10.2015 को किया गया हो सकता है– अर्थात् उस अवधि के दौरान जब दिनांक 03.06.2013 का आदेश प्रभावी था, क्योंकि

यथास्थिति आदेश केवल दिनांक 28.03.2016 को ही निरस्त किया गया। इसके अतिरिक्त, एक अन्य दृष्टिकोण से भी परीक्षण करने पर, यह स्पष्ट है कि भले ही किसी निषेधाज्ञा आदेश को बाद में निरस्त कर दिया जाए, तथापि उसके प्रभावी रहने की अवधि के दौरान उसके उल्लंघन के परिणाम उल्लंघनकर्ता पर आ सकते हैं–जैसा कि ***समी खान बनाम बिंदु खान,*** **(1998) 7 एस सी सी 59**[7] में प्रतिपादित किया गया है।

37. इस चरण पर, ***माधो बनाम महाराष्ट्र राज्य,*** **(2013) 5 एस सी सी 615** में प्रतिपादित विधि-स्थिति का उल्लेख करना उपयुक्त होगा, जिसमें यह कहा गया था कि–

> *'**18.** जब किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई शिकायत प्रस्तुत की जाती है, तो वह इस बात के लिए बाध्य नहीं होता कि यदि शिकायत में किए गए कथन किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हों, तो वह अनिवार्य रूप से संज्ञान ही ले। इस विषय में मजिस्ट्रेट के पास विवेकाधिकार होता है। यदि शिकायत के अवलोकन पर वह पाता है कि उसमें किए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं और धारा 156(3) के अंतर्गत जाँच हेतु शिकायत को पुलिस को अग्रेषित करना न्याय की दृष्टि से उपयुक्त होगा तथा उस विषय की जाँच में, जो मूलतः पुलिस का कर्तव्य है, मजिस्ट्रेट का बहुमूल्य समय व्यर्थ होने से बचेगा, तो वह अपराध का संज्ञान स्वयं लेने के विकल्प के रूप में उक्त मार्ग अपनाने के लिए न्यायोचित होगा। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, संज्ञेय अपराध के घटित होने संबंधी शिकायत के मामले में, धारा 156(3) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(a) के अंतर्गत अपराध का संज्ञान लेने से पूर्व किया जा सकता है। तथापि, यदि वह एक बार ऐसा संज्ञान ले लेता है और अध्याय XV में निहित प्रक्रिया को अपनाना प्रारंभ कर देता है, तो वह पुनः संज्ञान-पूर्व अवस्था में लौटकर धारा 156(3) का सहारा लेने में सक्षम नहीं होता।'*

(ज़ोर दिया गया)

---

7 विधि की इस स्थिति को हाल ही में ***लावण्या सी बनाम विट्टल गुरुदास पई,*** **2025 एस सी सी ऑनलाइन एससी 499,** में पुनः दोहराया गया है, जिसमें हममें से एक (पी. मिथल, न्यायाधीश) पीठ का हिस्सा थे।

38. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, जे.एम.एफ.सी. द्वारा दिनांक 18.01.2018 को पारित आदेश को दोषपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता। पुलिस द्वारा पूर्ण एवं विस्तृत जाँच किए जाने को उचित ठहराने हेतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी। हमारे मत में, जे.एम.एफ.सी. ने अपने समक्ष उपलब्ध सामग्री के आलोक में, अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथमदृष्टया मामला स्थापित होने के कारण, मामले को जाँच हेतु पुलिस को सही रूप से संदर्भित किया। ***रामदेव फूड प्रोडक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य,*** **(2015) 6 एस सी सी 439** में इस न्यायालय के तीन माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिमत व्यक्त किया कि–

*'**13.** हम सर्वप्रथम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या मजिस्ट्रेट को धारा 156(3) के अंतर्गत कार्यवाही करनी चाहिए थी अथवा धारा 202(1) के अंतर्गत आगे बढ़ना उचित था, तथा इन दोनों प्रावधानों के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के मापदंड क्या हैं।*

xxx

__22.__ अतः हम प्रथम प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं कि–

__22.1.__ धारा 156(3) के अंतर्गत निर्देश मजिस्ट्रेट द्वारा मस्तिष्क के अनुप्रयोग के पश्चात ही दिया जाना चाहिए। जब मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान नहीं लेता, प्रक्रिया जारी करने को स्थगित करना आवश्यक नहीं समझता, और यह पाता है कि तत्काल आगे बढ़ने हेतु मामला बनता है, तब उक्त प्रावधान के अंतर्गत निर्देश दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ उपलब्ध सूचना की विश्वसनीयता अथवा न्याय के हितों को तौलते हुए यह उपयुक्त समझा जाए कि सीधे जाँच का निर्देश दिया जाए, वहाँ ऐसा निर्देश दिया जाता है।

__22.2.__ वे मामले जहाँ मजिस्ट्रेट संज्ञान लेता है और प्रक्रिया जारी करने को स्थगित करता है, ऐसे मामले होते हैं जिनमें मजिस्ट्रेट को अभी यह निर्धारित करना होता है कि 'आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार का अस्तित्व है या नहीं'। ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य., (2014) 2 एस सी सी 1] के पैरा 120.6 के अंतर्गत आने वाले मामलों की श्रेणी धारा 202 के अंतर्गत आ सकती है।

__22.3.__ संहिता की योजना से प्राप्त इन व्यापक दिशानिर्देशों के अधीन, मजिस्ट्रेट द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग प्रत्येक मामले में न्याय के हितों द्वारा निर्देशित होगा।"

xxx

__38.__ देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी बनाम वी. नारायण रेड्डी [(1976) 3 एस सी सी 252], नेशनल बैंक ऑफ ओमान बनाम बराकरा अब्दुल अजीज [(2013) 2 एस सी सी 488], माधो बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2013) 5 एस सी सी 615], रमेशभाई पांडुराव हेडाऊ बनाम गुजरात राज्य [(2010) 4 एस सी सी 185] में धारा 156(3) और धारा 202 की योजना पर विचार किया गया है। <u>यह अवलोकन किया गया कि धारा 156(3) के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेने से पूर्व किया जा सकता है और यह पुलिस को, धारा 156 से प्रारंभ होकर धारा 173 के अंतर्गत रिपोर्ट या आरोप-पत्र तक की उसकी पूर्ण जाँच शक्ति के प्रयोग हेतु, एक प्रकार की पूर्व-सूचना अथवा स्मरण-सूचक होता है।</u> इसके विपरीत, धारा 202 संज्ञानोत्तर अवस्था में लागू होती है और जाँच का निर्देश इस उद्देश्य से दिया जाता है कि यह निर्णय लिया जा सके कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं।'

(ज़ोर दिया गया)

39. ***रामदेव*** *(उपर्युक्त) का उल्लेख* ***कार्डिनल मार जॉर्ज एलेनचेरी बनाम केरल राज्य,*** **(2023) 18 एस सी सी 730** में किया गया है। उच्च न्यायालय, विशेष रूप से प्रथम विवादित आदेश में, प्रतीत होता है कि जे.एम.एफ.सी. द्वारा प्रयुक्त शब्द '*further*' से अनावश्यक रूप से प्रभावित हो गया। प्रथम विवादित आदेश से संबंधित अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। यहाँ जे.एम.एफ.सी. द्वारा दिनांक 18.01.2018 को पारित आदेश का उल्लेख करना उपयुक्त होगा:

'...

<u>निजी शिकायत के अवलोकन पर यह पाया गया कि उक्त मामले की पुलिस द्वारा आगे जाँच किए जाने की आवश्यकता है। अतः यह न्यायालय यह अनुभव करता है कि उक्त मामला दं.प्र.सं. की धारा 156(3) के अंतर्गत संदर्भित किया जाना चाहिए।</u>

<u>अतः उपर्युक्त मामला दं.प्र.सं. की धारा 156(3) के अंतर्गत जाँच हेतु खाडे बाजार थाना को संदर्भित किया जाता है।</u>

...'

(ज़ोर दिया गया)

40. उपर्युक्त अंश से कोई संदेह शेष नहीं रहता कि जे.एम.एफ.सी. ने मामले को संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत पुलिस को संदर्भित किया था और '*further*' शब्द का प्रयोग संहिता की धारा 173(8) के संदर्भ में नहीं था–इस सूक्ष्म भेद को प्रथम विवादित आदेश ने नज़रअंदाज़ कर दिया। हमारे विचार में, वर्तमान मामलों में प्रथमदृष्टया ऐसे तथ्य परिलक्षित होते हैं जो संज्ञेय अपराधों के घटित होने को दर्शाते हैं और जो पुलिस जाँच को न्यायोचित ठहराते हैं। अतः विवादित आदेशों में हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

41. इस न्यायालय की तीन माननीय न्यायाधीशों की पीठ ने ***नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड*** (उपर्युक्त) में निम्नलिखित अवलोकन किया:

> *"**16.** किसी दिए गए मामले में, यह आरोप हो सकता है कि किसी दीवानी विवाद को केवल अभियुक्त पर दबाव डालने के उद्देश्य से आपराधिक विवाद में परिवर्तित कर दिया गया है। इसी प्रकार, किसी मामले में शिकायत अपने चेहरे पर ही विधि द्वारा वर्जित भी हो सकती है। एफ.आई.आर./शिकायत में किए गए आरोप किसी भी प्रकार से संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं कर सकते। ऐसे मामलों में तथा अपवादस्वरूप परिस्थितियों में, सावधानी बरतते हुए, उच्च न्यायालय आगे की जाँच पर रोक लगा सकता है। तथापि, साथ ही, वास्तविक शिकायतें/एफ.आई.आर. भी हो सकती हैं और पुलिस/जाँच एजेंसी का संज्ञेय अपराधों की जाँच करने का वैधानिक दायित्व/अधिकार/कर्तव्य होता है। अतः एक ओर वास्तविक शिकायतकर्ताओं के अधिकारों और संज्ञेय अपराध के खुलासे वाली एफ.आई.आर. तथा जाँच एजेंसी के वैधानिक दायित्व के बीच, और दूसरी ओर उन निर्दोष व्यक्तियों के अधिकारों के बीच–जिनके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही प्रारंभ की गई हो जो किसी मामले में विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकती है–संतुलन स्थापित किया जाना आवश्यक है। तथापि, यदि तथ्य अस्पष्ट हों और जाँच अभी प्रारंभिक अवस्था में ही हो, तो उच्च न्यायालय को ऐसी शक्तियों के प्रयोग में संयम बरतना चाहिए और संहिता के प्रावधानों के अंतर्गत अपनी वैधानिक जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए जाँच एजेंसी को आगे जाँच करने की अनुमति देनी चाहिए। ऐसे मामलों में भी उच्च न्यायालय को संक्षेप में कारण दर्ज करने होंगे कि इस चरण पर आगे की जाँच को स्थगित करना क्यों आवश्यक है। उच्च न्यायालय को यह समझना चाहिए कि आपराधिक न्याय-प्रशासन में त्वरित जाँच एक आवश्यकता है।"*

42. आगे यह भी रेखांकित किया गया:

> '***33.15.*** *जब कथित अभियुक्त द्वारा एफ.आई.आर. को निरस्त करने की प्रार्थना की जाती है और न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करता है, तब न्यायालय को केवल यह देखना होता है कि क्या एफ.आई.आर. में किए गए आरोप संज्ञेय अपराध का खुलासा करते हैं या नहीं। न्यायालय को आरोपों के गुण-दोष पर विचार करने की आवश्यकता नहीं होती और उसे जाँच एजेंसी/पुलिस को एफ.आई.आर. में किए गए आरोपों की जाँच करने की अनुमति देनी होती है।*'

(ज़ोर दिया गया)

43. इस प्रकार, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री तथा पक्षकारों के माननीय अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों के समग्र विचार के पश्चात, दिनांक 24.07.2019 एवं 18.11.2021 के प्रथम एवं द्वितीय विवादित आदेश निरस्त किए जाते हैं। अपराध संख्या 12/2018, खाडे बाज़ार पुलिस थाना की एफ.आई.आर. बहाल की जाती है। पुलिस को विधि के अनुसार शीघ्र जाँच करने का निर्देश दिया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निजी पक्षकारों को पुलिस जाँच के दौरान तथा उपयुक्त चरण पर संबंधित न्यायालय के समक्ष, विधि के अनुसार, अपने प्रतिरक्षण/स्थिति को दर्शाने वाली सामग्री प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होगी।

44. प्रस्थान से पूर्व यह स्पष्ट किया जाता है कि इस निर्णय में की गई टिप्पणियाँ केवल हमारे समक्ष विचाराधीन मुद्दों के निस्तारण के उद्देश्य से हैं और परस्पर लंबित किसी भी कार्यवाही में वे न तो पक्षकारों को प्रभावित करेंगी और न ही उनका समर्थन करेंगी। उपर्युक्त अनुसार अपीलें स्वीकार की जाती हैं। लंबित आवेदन समाप्त माने जाते हैं। तथापि, परिस्थितियों में, व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

मामले का परिणाम: अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

†शीर्ष टिप्पणियाँ निधि जैन द्वारा तैयार की गईं।

*यह अनुवाद मो. नसीम अख्तर पैनल अनुवादक (झारखंड उच्च न्यायालय, रांची) द्वारा किया गया।